बीच बाजार, माँ का आँचल तार-तार

प्रफुल्ल कोलख्यान

मेरे जन्म के पश्चात मेरी जननी माँ की छाती में दूध नहीं उतरा था। मैंने माँ का दूध नहीं पिया है। माँ के दूध की जगह पहले बकरी का और फिर अपनी बड़ी मामी का दूध, जिस पर मुझ से ढाई साल बड़े भाई का हक था, पी कर मैं पला। इस तथ्य का ज्ञान मुझे किन परिस्थितियों में कब, कैसे और किसके श्री-मुख से हुआ मुझे ठीक से याद नहीं। जो याद है वह बड़ा ही मार्मिक और करूण प्रसंग है। बचपन में मेरे दोनो हाथ की अंगुलियों में बड़ा ही कष्टप्रद और संक्रामक किस्म का घाव था। इसे हमारे क्षेत्र में कलकल कहा जाता है। वैद्य बाबा अर्थात डॉ. मधुबीर झा, जो अब नहीं रहे, हमारे गाँव के आस-पास के इलाके में बड़े ही चमत्कारी होमियोपेथ के रूप में जाने जाते थे, मेरा इलाज करते थे। लेकिन मेरा कष्ट कम नहीं हो पा रहा था, कम-से-कम उस तेजी नहीं हो पा रहा था, जिस तेजी से मेरे माता-पिता को अपेक्षा रही होगी। ऐसे में आवो-हवा बदलने का एक आम उपाय सामने आता है। पता नहीं इस कारण से या पारिवारिक परिस्थितियों के अन्य कारण से या दोनो के ही मिले-जुले कारण से मुझे अपने पिता के संग झारखंड के रामगढ़ से कुछ दूरी पर अवस्थित प्रसिद्ध तीर्थ और पर्यटन स्थान रजरप्पा के पास के एक छोटे-से गाँव भुचुंगडीह ले जाया गया था। मेरे बाबूजी एन.सी.डी.सी. में नौकरी करते थे और उस समय वहीं तैनात थे। पहली बार तो माँ भी साथ आई थी लेकिन बाद में वे गाँव पर ही रहने लगी थी।

सौंदर्य और सुष्मा से संपन्न उस क्षेत्र में रहते हुए मैं एक क्षण के लिए भी माँ के अपने से दूर होने के भाव के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता था। शायद यही कारण है कि सुरम्य और आह्लादकारी वातावरण में भी उदासी का स्थाई-भाव मेरे मनो-स्वभाव का हिस्सा बन गया। गाँव जाता था तो मैथिली में बात करते-करते नागपुरी में बतियाने लगता था और जब लौटकर भुचुंगडीह आता था तो वहाँ नागपुरी में बात करते हुए मैथिली में बतियाने लगता था। यह सब मेरे अजाने में होता था और जब तक मुझे इसका एहसास हुआ करता था तब तक इतनी देर हो चुकी होती थी कि मजाक का पात्र बनने के अलावे मेरे पास कोई विकल्प नहीं बचता था। मैं तब पाँचवीं कक्षा का छात्र रहा होऊँगा। वार्षिक परीक्षा चल रही थी। हर बार की तरह उस बार भी बाबूजी ने समझाया था कि जवाब देने के पहले सवाल को ध्यान से पढ़ना चाहिए। बाबूजी की हिदायत के कारण परीक्षा में मेरा बहुत सारा समय प्रश्न पढ़ने में ही चला जाया करता था। उस बार की परीक्षा में मेरा मन प्रश्न-पत्र के इस निर्देश पर अटक गया था कि उत्तर यथासंभव अपनी भाषा में देना है। मैं अपनी भाषा का अर्थ समझ नहीं पा रहा था। शिक्षक से पूछने पर बड़ा ही कठोर जबाव मिला था कि अपनी भाषा, माने अपनी भाषा। और काफी ऊहापोह के बाद अंतत: मैंने परीक्षा के उस प्रश्न-पत्र का जबाव मैथिली में ही दिया। छोटी जगह थी सो बाबूजी को मेरे इस कारनामे का पता चलते देर नहीं हुई। इसका जो खामियाजा मुझे भोगना चाहिए था वह तो मुझे भोगना ही पड़ा लेकिन ऐसा लगता है कि भाषा-प्रयोग को ले कर मेरे मन में उन घटनाओं का असर कोई कम गहरा नहीं पड़ा। अपनी भाषा के कारण स्कूल के साथियों के बीच मजाक का पात्र बनने लगा था। साथी मुझे देखकर अपनी भाषा, अपनी भाषा कहकर चिढ़ाया करते थे। उन्हीं दिनों की बात है, एक साथी ने इसी प्रसंग को ले कर मुझे चिढ़या था। सामान्यत: ऐसे प्रयास की मैं उपेक्षा करने की कोशिश किया करता था। लेकिन उस दिन मुझे पता नहीं कैसे बहुत गुस्सा आ गया। गुस्से में मैंने यथा-रीति उसको कसकर जवाब दिया। बात आगे बढ़ गई। आप्त-वचनों के आदान-प्रदान के पश्चात, नौबत मारा-मारी तक पहुँच गई। इस स्थिति में उसने मुझे ललकारते हुए कहा कि माँ का दूध पिया है तो एक शब्द और बोल कर दिखाओ। पता नहीं माँ के दूध पीने की बात का मेरे ऊपर कैसा असर हुआ मैं एकदम से जड़ हो गया। एकदम अशक्त। यहाँ तक कि उसने मेरी जमकर रामधुलाई की और प्रतिवाद मेरा हाथ उठा तक नहीं। इतना अधिक मैं कभी नहीं पिटा, न इतना

अधिक निरीह ही कभी बना। माँ के दूध की बात सुनकर ही मुझे उस समय याद आया था कि मैंने माँ का दूध नहीं पिया है। और मैं आज तक इस तथ्य को कभी भूल नहीं पाया।

कुछ दिन पहले एक जानकारी यह मिली थी कि व्यवसाय-वाणिज्य की भारतीय राजधानी मुंबई में मानवी माँ के दूध का एक बैंक खुला है। जहाँ माँ का दूध मिलेगा। जरूरतमंद यहाँ से माँ का दूध खरीद सकते हैं। दूध की पैकिंग इस तरह से होगी कि पैकिंग से दो महीने तक दूध सेवन के लिए उपयोगी रहेगा। निश्चित ही इस व्यवस्था का एक मानवीय पक्ष भी होगा या हो सकता है। लेकिन शायद अपने जीवनानुभव की पृष्ठभूमि के कारण या बाजार के आक्रमण से डरे मध्यवर्गीय मन के कारण मैं इस जानकारी के मिलते ही बहुत बैचैन हो गया। अब अगर माँ का दूध बिकेगा तो जाहिर है एक वर्ग खरीदनेवालों का होगा और दूसरा वर्ग बेचनेवालों का होगा। अब यह कोई रहस्य नहीं है कि कम-से-कम आज के बाजार और बजाजारवादी सिद्धांतों और नवाचारों के समय में खरीदने और बेचने का धंधा सिर्फ जरूरत से ही तय नहीं हुआ करता है। कौन किन परिस्थतियों में खरीदेगा और कौन किन परिस्थितियों में (बेचेगी नहीं!) बेचेगा! माँ का दूध जो संतान के लिए सब से अधिक सुरक्षित और सुनिश्चित आहार था अब बाजार वहाँ भी पहुँच गया। माँ का दूध भी पण्य हो गया! हिंदू धर्म में गाय को माँ के रूप में मानने का आग्रह, प्रचलन और उससे अधिक प्रचार रहा है। अब तो माँ के गाय के रूप में बदलने की अकल्पनीय विवशता सामने आनेवाली है। अमानवीय है ऐसे प्रसंगों में कानून का मुँह जोहना फिर भी विचार का एक पक्ष यह भी हो सकता है कि दूध पर किसका स्वाभाविक अधिकार या हक होना चाहिए? संतान का? माँ का? पिता का? बाजार का? पैसे का? बड़े होने पर जब संतान को पता चलेगा कि उसकी माँ का दूध बेच दिया जाता था, तब उसके मन पर कैसी प्रतिक्रिया होगी? और इस प्रतिक्रिया का उसके व्यक्तित्व गठन पर कैसा असर होगा? और किस प्रकार के मानवीय रिश्ते बनेंगे आनेवाले समय में? बीच बाजार में माँ का आँचल तार-तार होनेवाला है? कैसी है दुनिया मेरे आगे, आपके आगे?

सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान